ईश्वर एवं सत्य विचार : गांधीजी के चिन्तन का केन्द्र विन्दु **ईश्वर** की अवधारणा रही है। इसी मूल प्रत्यय के चारों ओर उनके सभी सिद्धांत चक्कर काटते हैं। ईश्वर में उनका विश्वास वैष्णव परिवार में जन्म लेने के कारण हुआ। बचपन से ही उन्हें "राम नाम" जपने की शिक्षा मिली थी। "राम" को वैष्णव ईश्वर का अवतार मानते हैं। हो सकता है अपने जीवन के प्रारम्भ में गांधी जी ने भी "राम" को ईश्वर का अवतार माना हो किन्तु वे उपनिषद्, गीता, वेदान्त के अध्ययन और अन्य धर्मो से सम्पर्क होने के बाद उन्होंने गम्भीर चिन्तन कर "अवतार" की अवधारणा का त्याग कर दिया। 28 अप्रैल 1946 को हरिजन नामक पत्रिका में वे कहते हैं कि "मेरे राम" ऐतिहासिक राम नहीं है वे नित्य अजन्मा और अद्विवतीय है। मैं केवल उन्हीं की

Scanned by CamScanner

पूजा करता हूँ।''[6]

गांधी जी की ईश्वर-धारणा एक नित्य, अनादि, अद्वितीय और एक परमसत्ता की धारणा है। उनका ईश्वर इस्लाम धर्म के अहल्लाह से भिन्न नहीं है। गांधी जी की ईश्वर धारणा को ईश्वरवाद (थीज्म) की संज्ञा दी जा सकती है। ईश्वरवाद एक व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की धारणा में विश्वास करता है जो हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है तथा हमारे दु:खों से द्रवित होकर हमें सहायता करता है। गांधी जी की ईश्वर में गहरी निष्ठा थी। वे ईश्वर की उपासना भी किया करते थे। ईश्वरवाद ईश्वर को अशेष कल्याणकारी गुणों से सम्पन्न मानता है। गांधी जी ने भी ईश्वर को सगुण एवं व्यक्तिवान माना है। उनकी दृष्टि में ईश्वर हमें केवल बौद्धिक तुष्टि ही नहीं देता बल्कि व्याकुल हृदय को शान्ति भी देता है। जीवन-संघर्ष से जूझने के लिए ईश्वर हमें प्रेरना भी देता है। ईश्वर हमें शक्ति तथा धर्म भी प्रदान करता है। गांधी जी के शब्दों में ''जो केवल बौद्धिक जिज्ञासा की शान्ति करे, वह यथार्थ में ईश्वर नहीं है। ईश्वर को ईश्वर होने के लिए हमारे हृदय पर शासन और हृदय परिवर्तन करना भी अनिवार्य है।''[7]

यहाँ पर एक आपत्ति की जा सकती है कि वे अद्वैतवादी हैं अथवा द्वैतवादी? एक मित्र के द्वारा उठाये गये प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं ''मैं अद्वैतवादी हूँ फिर भी मैं द्वैतवाद का समर्थन कर सकता हूँ। जगत का परिवर्तन प्रतिक्षण हो रहा है, अत: यह असत् है, इसकी कोई स्थायी सत्ता नहीं है। किन्तु यद्यपि यह निरन्तर परिवर्तनशील है फिर भी इसमें कुछ ऐसा है जिसका सदा अस्तित्व रहता है, और उस

Scanned by CamScanner

सीमा तक यह सत् है। इसलिए इसे सत् और असत् दोनों कहने में तथा इस प्रकार अनेकान्तवादी या स्यादवादी कहलाने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मेरा स्यादवाद, विद्वानों के स्यादवाद जैसा न होकर नितान्त मेरा अपना ही है।''[8]

इस तर्क के आधार पर गांधीजी को कुछ विद्वान शंकर के अद्वैतवाद का समर्थक मानते हैं, तो कुछ जैनियों के अनेकान्तवाद का समर्थक। यद्यपि गांधीजी पर उपनिषदों का प्रभाव था, फिर भी उन्हें शंकर का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। शंकर के लिये केवल निर्गुण ब्रह्म की सत्ता है, ईश्वर जगत् आदि सभी माया हैं। शंकर के लिए ईश्वर मायोपाधित है और जगत मिथ्या। गांधीजी ने यद्यपि अपने लेखों में स्वंय को अद्ववैतवादी और इस जगत् को मिथ्या कहा है, फिर भी उन्हें मायावादी और अद्ववैतवादी मानने का कोई तुक नहीं मिलता। इन शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपने लेखों में अवश्य किया है, किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक उन लेखों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे इन शब्दों के तकनीकि अर्थ से अपरिचित थे। जब वे इस जगत् को मिथ्या कहते हैं तो उनका तात्पर्य जगत् की परिवर्तनशीलता क्षण भंगुरता से है। वे अपने को अद्वैतवादी कहते हैं और साथ-साथ यह भी कहते हैं कि वे द्वैतवाद के भी समर्थक हैं। कोई भी शंकर का अनुयायी इस तरह की बात नहीं करेगा। गांधी जी की ईश्वर की धारणा वैष्णवों की ईश्वर धारणा जैसी है या गीता के पुरूषोत्तम रूप में ईश्वर की धारणा है जिसके समक्ष हम अपने को आत्म समर्पण कर सकें। अपनी आत्म कथा में वे कहते हैं बिना ईश्वर कृपा में पूर्ण समर्पित हुए चिंतन पर पूर्ण विजय असंभव है।''[9]

Scanned by CamScanner

यद्यपि गांधीजी की ईश्वर धारणा पर वैष्णव धर्म का बहुत अधिक प्रभाव है फिर भी गांधी जी का दृष्टिकोण ईश्वर के प्रति भिन्न है। विभिन्न धर्मो के अध्ययन के परिणाम स्वरूप वे ईश्वर को मूलतः अज्ञात सत्ता मानते हैं। मानव उस परमसत्ता को अपने ढंग से वर्णन करता है। ये सभी वर्णन ईश्वर की सत्ता की विभिन्न झाँकिया है। उनकी ईश्वर सम्बंधी धारणा जब वे कहते हैं ''ईश्वर वह अपरिभाष्य कुछ है जो हम सभी अनुभव करते हैं किन्तु उसे हम नहीं जानते।'' इस प्रकार ईश्वर का ज्ञान उनके लिए एक रहस्य है। इसी कारण वे इस जगत् और जीवन के सभी उपलब्धियों को ईश्वर रूप मान बैठते हैं।

''मेरे लिए ईश्वर ही सत्य एवं प्रेय है, ईश्वर ही नीतिशास्त्र एवं नैतिकता है, ईश्वर ही निर्भयता है। ईश्वर ही जीवन और ज्योति है और फिर भी वह इन सबसे परे है। ईश्वर ही हमारी आत्मा की आवाज है। वही अनीश्वरवादियों का अनीश्वर है।''[10]

उनका मानना था कि यदि सम्पूर्ण विश्व अनीश्वरवादी बन जाये तो भी वे ईश्वर के एक मात्र गवाह के रूप में खड़ा रहेंगे। मैं जल और वायु के बिना शायद रह सकता हूँ, परन्तु ईश्वर के बिना नहीं'' तुम मेरी आँखें निकाल सकते हो, परंतु उससे मैं नहीं मरूँगा। तुम मेरी नाक काट सकते हो परंतु उससे भी मैं नहीं मरूँगा, परन्तु ईश्वर पर मेरा विश्वास गया और मैं मरा'' इस वाक्यों से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि गांधीजी का ईश्वर के सम्बंध में विचार पूर्णतः ईश्वरवादी था।

Scanned by CamScanner

"**सत्य**" : - गांधी के दार्शनिक विचारों की दूसरी मूल अवधारणा "सत्य" की अवधारणा है। गांधीजी ने "ईश्वर" और "सत्य" की अवधारणाओं में भेद नहीं किया है। उनके लिए "सत्य" ही ईश्वर है। वे यह नहीं कहते कि ईश्वर सत्य है बल्कि वे सत्य को ही ईश्वर की संज्ञा देते हैं। "सत्य" शब्द की उत्पत्ति "सत्" शब्द से हुई है जिसका अर्थ "सत्ता" है। सत्तावन वही हो सकता जो सत्य है। असत्य की कभी सत्ता नहीं हो सकता भले ही वह कुछ देर के लिए सत्य जैसा भाषित है। मिथ्या सदा मिथ्या ही रहेगा।

"सत्य के अतिरिक्त न कुछ है और न किसी की वास्तविक सत्ता है। यही कारण हे कि सत् अथवा सत्य कदाचित् ईश्वर की सबसे महत्वपूर्ण संज्ञा है। वास्तव में सत्य को ईश्वर कहना, ईश्वर को सत्य कहने से कहीं अधिक सत्य है"[11]

दर्शन शास्त्र के विधार्थी होने के कारण हमें और अन्य दार्शनिकों को "सत्य" एवं सत् को एक समझने में आपत्ति हो सकती है। साधारणतः "सत्य" का सम्बन्ध ज्ञान प्रक्रिया से हैं। सामान्यता वस्तु एवं विचार के सामंजस्य को सत्य कहा जाता है। सत्य ज्ञान स्वतः कोई वस्तु नहीं बल्कि वस्तु और विचार की संगति है। साधारणता ज्ञान प्रक्रिया में "ज्ञान" और "ज्ञेय" दोनों को अलग-अलग माना जाता है और दोनों में संगति या अनुकूलता को ही सत्य कहा जाता है।

इस कठिनाई का समाधान गांधीजी के विचार प्रक्रिया को समझने में है। जबतक, ज्ञान प्राप्ति का साधन हम अनुभव एवं बुद्धि को मानते रहेंगे तबतक सत्य एवं

Scanned by CamScanner

सत् को एक समझने में कठिनाई रहेगी। ज्ञान प्राप्ति का साधन "अन्तःप्रज्ञा" भी है। गांधीजी ने अन्तःकरण प्रवृत्ति (इनट्यूसन) को ज्ञान का सर्वोच्च साधन माना है। इसी अर्न्तप्रज्ञा की स्थिति में सत्य और सत् में एक्य स्थापित हो सकता है। इस प्रकार की अनुभूति में ज्ञाता और ज्ञेय में अन्तर नहीं रह जाता। उपनिषद में ब्रह्म को "सत्यज्ञानं अनन्तम" कहा गया है जिसका अर्थ होता है व्रह्म अर्थात मूलसत्ता, सत्यज्ञान और अनन्त है। ईसाई धर्म में भी ईसामसीह की उक्ति है, "मैं ही साधन, सत्य एवं जीवन हूँ।"[12]

गांधीजी के दर्शन में सत्य, सत्यवान, सत्ता और सत्ताज्ञान में भेद नहीं किया गया हैं। गांधीजी ने सत्य को ईश्वर की संज्ञा काफी जाँच पड़ताल के बाद दिया है। गांधीजी ने ईश्वर की सच्चाई की खोज जीवन के आरम्भ से ही शुरू किया था। विभिन्न धर्मो के अध्ययन के परिणामस्वरूप उन्हें ईश्वर की सत्ता में कोई संशय् नहीं था। किन्तु राजनीतिक जीवन में उन्हें कुछ अनीश्वरवादियों से भी पाला पड़ा और वे ईश्वर की सत्यता के अनुसंधान में लग गये। तर्क और बुद्धि के सहारे मनुष्य सभी तथ्यों को अस्वीकार कर सकता है। वह ईश्वर की सत्ता को भी तर्क के बल पर अस्वीकार कर सकता है किन्तु तर्क के आधार पर वह सत्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। इसीलिए उन्होंने सत्य को ईश्वर माना है। किन्तु यदि सत्य ही ईश्वर है तो क्या हमें सत्य की उपासना भी करनी चाहिए? क्या हम उसी तरह सत्य की भी उपासना कर सकते हैं, जिस तरह हम ईश्वर की उपासना करते हैं? गांधीजी का उत्तर इस सम्बंध में स्वीकारात्मक

Scanned by CamScanner

है। लेकिन यह बात तब तक हम समझ नहीं सकते जब तक हम उपासना के मर्म को न समझ लें।

उपासना का अर्थ ''अपनी श्रद्धा'' को व्यक्त करना है। उपासना में एक उपासक होता है और दूसरा उपास्य । उपासक उपास्य के प्रति अपनी श्रद्धा शब्दों में या अपने कर्मो द्वारा व्यक्त करता है। उपासना मानव की भावना को व्यक्त करने का एक साधन है। उपासक जिसकी उपासना करता है उसे अत्यधिक श्रद्धा, सम्मान की दृष्टि से देखता है। अपनी निष्ठा और भक्ति व्यक्त करने में हम उपास्य के गुणों की गान भी करते हैं। उपासक उपास्य को अधिक श्रद्धा तभी दे सकता है जब वह मन–वच–कर्म तीनों से उसे श्रद्धा का पात्र समझता हो। पूजा उसी की की जाती है जो पूज्य है। कभी–कभी हम अपने से बड़े लोगों को भी पूज्य मानते हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। पूजा या उपासना में मानव के तीन विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है:–

(1) मानव जिसकी उपासना करता है उसकी सत्यता में उसका अखन्ड विश्वास रहता है।

(2) वह जिसकी उपासना करता है उसकी महानता से वह अभिभूत हो उठता है। उपास्य के प्रति वह नतमस्तक हो जाता है। (3) अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए वह उसकी उपासना करता है उसके अनुकूल अपने का बनाने का भी प्रयास करता है ''और इस प्रयास में जितनी दूर तक वह सफल होता है, उसी अनुपात

Scanned by CamScanner

में उसका उमंग प्रेम भी बढ़ता है। इस प्रकार उपासना भय-मूलक नहीं बल्कि प्रेम मूलक है। उपासना हमें आपस में प्रेम सद्भाव के साथ रहने की सीख देता है। उपासना से हम बल ग्रहणं करते हैं। इससे हमें शक्ति और स्फूर्ति मिलती है। यह हमें अपने मार्ग में बढ़ने में सहायता देती है। यह हमें निर्भय बनाती है।''[13]

अतः सत्य की उपासना संभव है। जब हमें ईश्वर की उपासना करते हैं तो ईश्वर के गुणों में हमारी अपार श्रद्धा रहती है, किन्तु ईश्वर की उपासना भिन्न-भिन्न प्रकार की और भिन्न-भिन्न नामों से किया जाता है। कोई ''राम'' कोई ''रहीम'' कोई ''कृष्ण'' की उपासना करता है। और हम अपने देशमें पाते हैं कि राम के उपासक कृष्ण या रहीम के उपासक से घृणा करते हैं। वैष्णव धर्मावलम्बी शैव मत की आलोचना करते हैं। हिन्दू और तुर्क दोनों के उपासना के ढंग भी अलग-अलग है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे इस बात का प्रमाण है कि इनकी उपासना दिखावटी है, वास्तविक नहीं।

गांधी जी ने बतलाया कि ईश्वर के सम्बंध में हमार आपसी मतभेद हो सकता है, किन्तु सत्य के सबंध में हिन्दू, मुस्लिम, सिख इसाई के बीच मतभेद नहीं हो सकता। इसलिए जो सत्य की उपासना करता है वह सदा सबके साथ प्रेमभाव बरत सकता है। सत्य बोलना, सत्य का अनुशीलन करना बहुत ही कठिन है। गाधी जी के शब्दों में ''मैं जानता हूँ कि सत्य बोलना पूर्ण सत्य और सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलना शत्रु के साथ भी न्याय करना कितना कठिन है और उससे भी अधिक कठिन तथ्यों को संभालना है।''[14]

Scanned by CamScanner

उपासना के लिए उपास्य का सबसे महान् होना आवश्यक है। गांधी जी के लिए सत्य से बढ़कर कुछ नहीं है। सत्य के प्रयोग के विषय में अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए गांधी जी ने कहा है – "वास्तव में मैंने उस शक्तिशाली प्रकाशपुंज की केवल एक हल्की सी झलक पकड़ पाया हूँ।"[15]

सत्य से बढ़कर कुछ नहीं है। उपासना से हमें बल मिलता है शक्ति मिलती, सन्तोष मिलता है। सत्य ही एक ऐसी चीज है जो जीवन को शक्ति और बल देता है। इसलिए सत्य उपास्य है इसमें कोई शंका नहीं की जा सकती। यह उपासना सार्व-भौमिक उपासना भी बन सकती है। अगर सभी कोई सत्य का उपासक हो जाय तो विश्व-प्रेम "वसुधैव कुटुम्वकम्" का आदर्श संभव हो जाय। सत्य सन्तोष दामिनी भी है। गांधीजी कहते हैं "इसलिए "सत्य ही ईश्वर है" परिभाषा मुझे सबसे अधिक संतोष देता है।"[16]

जब गांधी जी सत्य को ईश्वर कहते हैं तो इसका अर्थ है कि सत्य शाश्वत है, नित्य है। गांधीजी की सत्य धारणा किसी विशिष्ट सच या सत्य-वचन सम्बंधी नहीं है। सत्य उनके लिए निरपेक्ष सत्य है जो किसी अन्य धारना पर आधारित नहीं है। पाश्चात्य दार्शनिक देकार्त ने सत्य की मीमांसा करते हुए बतलाया कि सत्य का श्रोत ईश्वर है जो कपट नहीं कर सकता। किन्तु गांधी जी ने सत्य को ईश्वर की धारणा पर आधारित नहीं किया है। उनके लिए सत्य ही ईश्वर है। सत्य अपरिवर्तननीय और अखण्ड है। सत्य का कभी विनाश नहीं हो सकता।

Scanned by CamScanner

"इस नश्वर शरीर के माध्यम से हम उस शाश्वत सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकते।"[17] इस प्रकार गांधी जी ने सत्य और सत् मानकर उन्होंने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है। इस सिद्धांत के द्वारा वे विभिन्न वादों "यथा" अनीश्वरवाद, ईश्वरवाद; मार्क्सवाद द्वैतवाद, अद्वैतवाद, एकत्ववाद, अनेकत्ववाद इत्यादि में समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो सके।

Scanned by CamScanner